प्रोफेसर तातेड़ की टी.वी वार्ताएँ

4. भारतीय ऋषि परम्परा

हमारा देश भारत ऋषि परम्परा का देश है। हमारे देश में ऋषियों, मुनियों, संतों को मार्गदर्शक के रूप में स्वीकार किया गया है। ऋषि या संत उसे कहते है जो शांत होता है जिसने अपनी इन्द्रियों का दमन कर लिया है। काम, क्रोध, मद, लोभ जैसे कषाय उसमें नहीं होते। प्राचीन भारत में आश्रम व्यवस्था को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। इस व्यवस्था की नियोजना मनुष्य के जीवन को सुगठित और सुव्यस्थित करने के लिए की गयी थी। वस्तुतः जीवन की वास्तविकता को ध्यान में रखते हुए ज्ञान कर्त्तव्य और अध्यात्म के आधार पर मानव जीवन को ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम में विभक्त किया गया है। इसका सर्वोपरि और अंतिम उद्देश्य मोक्ष माना गया है। ब्रह्मचर्य आश्रम प्रथम आश्रम है। इसमें शिष्य ऋषियों के आश्रम में अपने श्रम के द्वारा ज्ञान प्राप्त करता है। इस आश्रम का प्रमुख उद्देश्य विद्या की प्राप्ति थी। प्राचीनकाल में चौदह विद्याएँ बतलायी गयी है। ब्रह्मचर्य आश्रम में ब्रह्मचारी गुरु के आश्रम में और उनके सान्निध्य में इन विद्याओं का ज्ञान प्राप्त करता था। दूसरा महत्त्वपूर्ण आश्रम गृहस्थ आश्रम है। गृहस्थ आश्रम ऐहिक और पारलौकिक सुख प्राप्ति के लिए विवाह करके अपने सामर्थ्य के अनुसार परोपकार करने और नियतकाल में यथाविधि ईश्वरोपासना और गृहकृत्य करने और सत्य धर्म में ही अपना तन, मन, धन लगाने और धर्मानुसार संतानोतपत्ति करने का उतरदायित्व रहता था। गृहस्थ आश्रम में व्यक्ति ब्रह्मचर्य आश्रम को समाप्त कर गुरुगृह से स्नातक बनकर विवाहोपरान्त प्रवेश करता था। जैसे वायु के आश्रय से जीवों का जीवन होता है वैसे ही गृहस्थ आश्रम से ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी आदि सब आश्रम वासियों का निर्वाह होता है। ऋषियों के सान्निध्य में उनके द्वारा प्राप्त शिक्षा का उपयोग मनुष्य इस जीवन में करता है। गृहस्थ आश्रम के बाद वानप्रस्थ आश्रम का प्रारम्भ होता था। वन की ओर प्रस्थान करना वानप्रस्थ आश्रम था। इस आश्रम में नित्य वेद पाठ कर जप को स्थिर रखना, शीत, ग्रीष्म आदि को सहन करना और सब प्राणियों पर दया रखने का भाव इस आश्रम में रहता था। चौथा आश्रम संन्यास आश्रम कहलाता है। संन्यास आश्रम महत्त्वपूर्ण आश्रम है। इस आश्रम में समस्त आसक्तियों का त्याग करके परिव्राजक होकर संन्यास आश्रम में प्रवेश किया जाता था। इसमें हर्ष शोकादि द्वन्द्वों से विमुक्त होकर संन्यासी ब्रह्म में अवस्थित होता है। परिव्राजक उसे कहते है जो सबकुछ त्यागकर वनों में या प्रकृति के अंचल में अपना निवास बना लेता है। आश्रम व्यवस्था के बाद समाज व्यवस्था को चलाने के लिए हमारे देश में वर्ण व्यवस्था का महत्त्वपूर्ण स्थान था। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र चार वर्ण है। ब्राह्मण का कार्य समाज को शिक्षा देना, क्षत्रिय का कार्य राष्ट्र की रक्षा करना, वैश्य का कार्य समाज का भरण-पोषण करना और शूद्र का कार्य सेवा करना निर्धारित था। गुरुकुल प्रणाली ऋषि परम्परा की प्रणाली थी। आश्रमों में विद्यार्थी प्रातः उठकर नित्यकर्म करके मंद सुगंध वायु का सेवन करने के लिए आश्रमों में भ्रमण किया करते थे। यह आश्रम प्रकृति के नजदीक रहता था। जीवन में अनुशासन का पाठ ऋषियों के सान्निध्य में ही विद्यार्थी प्राप्त करता था। इस आश्रम में आत्म तत्वों को जानने की प्रेरणा मिलती थी। उन्हें यह शिक्षा दी जाती थी की जीयो और जीने दो। प्राचीन काल में राज्यसत्ता को नियंत्रित करने के लिए गुरु परम्परा का विधान था। राजा भी गुरुओं को महत्त्व देते थे। कोई भी निर्णय गुरु के परामर्श से ही लिया जाता था। गुरु रिद्धि-सिद्धि सम्पन्न होते थे। किन्तु आजकल यह परम्परा लुप्त हो गयी है। स्वस्थ समाज के निर्माण के लिए ऋषि परम्परा का पुनरुथान करना है। मनुष्य कितना भी आर्थिक रूप से सम्पन्न हो जाए किन्तु जब तक मानसिक शांति नहीं प्राप्त होती सबकुछ बेकार है। मानसिक शांति के लिए स्वार्थ, परार्थ, परमार्थ की चेतना

का विकास होना जरूरी है। परमार्थ की चेतना जागृत हो जाने पर मानवता का विकास सर्वोत्कृष्ट हो जाता है। स्वामी विवेकानन्द अमेरिका के शिकागो में व्याख्यान देने के लिए जब खड़े हुए तो लोग उनके वेशभूषा को देखकर हंस पड़े। किन्तु जब उनका भाषण सम्पन्न हुआ तो सभी लोग उनकी प्रशंसा करने लगे। स्वामी विवेकानन्द ने कहा था कि कोई भी व्यक्ति वेशभूषा से महान नहीं होता बल्कि आचार-विचार और चरित्र से महान होता है। मानव का चिंतन यदि उच्च आदर्शात्मक है तो उसके आदर्श भी ऊँचे होंगे। आज भारत में जो प्राकृतिक संपदा सुरक्षित है उसमें ऋषियों-मुनियों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्राचीनकाल में वृक्षों को देवता मानकर के पूजा होती थी। पीपल का वृक्ष आज भी पूजनीय है। इसमें वासुदेव का वास माना जाता है। वैज्ञानिक दृष्टि से भी अगर विचार किया जाये तो पीपल का वृक्ष सबसे अधिक ऑक्सीजन को छोड़ने वाला वृक्ष है। ऋषि बुरे कर्मों से इन्द्रियों के निरोध, राग-द्वेष आदि दोषों के क्षय और निर्वैरता से सब प्राणियों का कल्याण करता है। वैसे तो अर्थ, काम, धर्म और मोक्ष जीवन के चार पुरुषार्थ बतलाये गये है। धर्म जीवन को अनुशासित करता है। अर्थ जीवन का भरण-पोषण करता है। काम समाज के संबंध को पुष्ट करता है। मोक्ष जीवन की अंतिम अवस्था है। इस अवस्था में मनुष्य सबकुछ त्यागकर परमात्मा में लीन होना चाहता है। मोक्ष की अवस्था परम शांत की अवस्था है। यही जीवन का परम उद्देश्य है। भारतीय ऋषि परंपरा में जीवन के सभी आदर्श समाहित है।

श्री रूपनारायणजी द्वारा संपादित पुस्तक 'वे सफल कैसे हुए '

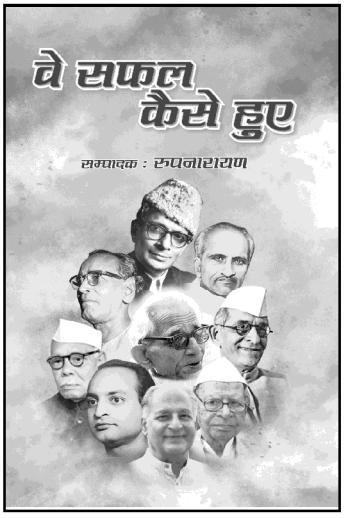

संपादक श्री रूपनारायणजी द्वारा संपादित यह पुस्तक एक जिज्ञासापूर्ण प्रश्न का उत्तर है, क्या रहस्य है इसका समाधान है। प्रस्तुत पुस्तक चिंतन के साथ एक समवेत स्वर देता है ''एक व्यक्ति का अवसान नहीं अपितु एक युग का अवसान हुआ है।'' ये आत्मकथ्य खुली किताब है उसके खुले पृष्ठ हैं। संक्षेप में 'कहें सत्य कहहुं लिखि कागद कोरे' तो समीचीन होगा। ये सभी आत्मकथ्य इस बात को रेखांकित करते हैं कि वह जो स्वयं देखता है, जिसका वह अनुभव करता है उसी को आत्मकेंद्रित कर आत्मकथ्य के रूप में दूसरे को हस्तांतरित करता है ताकि एक मील का पत्थर बने एक प्रकाशस्तंभ हो। इसमें जो भी तथ्य हैं कथ्य चिंतन के साथ, स्पष्ट एवं स्मृति मिलन है जो हमें पुनः-पुनः कहता है ''तुम्हारा अभाव है—तुम्हारी जरूरत है!'' 'स्व' की पहचान ही सामने वाले के लिए उपलब्धि है।

प्रस्तुत पुस्तक त्रिकोणात्मक दृष्टि से आकलन किया जा सकता है। 1. यादों के झरोखों से उस व्यक्ति पर ध्यान केंद्रित करना, 2. उसके उसका गहन संपर्क उसकी साधना, 3. पाठक को ध्यान रखना। इस प्रकार ये आत्मकथ्य कलात्मक रूप से गद्य रूप में विवरणात्मक परिचय है। आज हम जिस पायदान पर खड़े हैं वह सूचना क्रांति का समय है हमें हरित क्रांति लाना है। शुद्ध साहित्य, शुद्ध विचार, शुद्ध संकल्प से ही हम संस्कारित होंगे। नींव की महत्ता तभी होती है, जब उस पर भवन खड़ा हो क्योंकि नींव बिना भवन टिक नहीं सकता भवन पक्के नींव बिना मजबूत नहीं हो सकता है। इसी में ज्ञानभक्ति है विचारों का उद्गम ज्ञान प्रधान है, भावप्रधान है और कर्मप्रधान है। इस बुद्धिवादी युग में बुद्धिजीवी प्राणी के लिए जो हृदयपक्ष हैं उससे ही जीवन की सार्थकता है, निजी जीवन की छाप छोड़ने वाली यह पुस्तक क्रांति और शांति के इन दो ध्रुवों पर टिका मधुमय अवतरण है जिसके संपादन से प्रेरणा मिलती है तो एक संकल्प के साथ एक पथिक को पाथेय मिलता है। व्यक्ति का भाववाचक ही व्यक्तित्व है उसका कार्य उसकी कर्मठता उसकी प्रतिबद्धता ही कृतित्व है जो स्वयं में एक अमिट हस्ताक्षर—एक समवेत स्वर में कहना होगा ''जब तक सूरज चाँद रहेगा, तेरा नाम अमर रहेगा।'' इसमें वर्णन की अपेक्षा अनुभव मुख्य केंद्रबिन्दु है, समय जिसकी लेखनी है तो दुनिया उसकी स्याही....

सम्पादक :
रूपनारायण काबरा
प्रकाशक :
अनु प्रकाशन
958, धामाणी मार्केट की गली, चौड़ा रास्ता, जयपुर—302003
संस्करण : 2020 **पृष्ठ :** 216
ISBN : 978-81-7932-105-8
मूल्य : 400/- रुपये